# पतंजलि योग-दर्शन

## प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि का कार्य-काल 500 और 200 बी सी के बीच का माना जाता है। उनके लिखे तीन शास्त्रों का उल्लेख मिलता है। 'महाभाष्य' जो व्याकरण पर लिखी गई है, 'आयुर्वेद' जो स्वास्थ्य और जीवन के बारे में है, तथा 'योग-दर्शन' जो तन, मन और आत्मा के योग के संदर्भ में लिखी गई है। कुल 196 सूत्रों में पतंजलि ने अंतर्मन तक, तन,मन,आत्मा के योग तक कैसे पहुंचा जाय- की क्रम-विधि बतला दी है।

शास्त्र सत्य का प्रतिपादन ही नहीं करते, उस तक पहुंचने का पथ भी बतलाते हैं। इस योग-शास्त्र की प्रारंभिक पंक्ति है- 'अब योग का अनुशासन कहता हूं' । इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि वे योग का क्रम से कैसे पालन करें, इस विषय में कहेंगे। एक विशेष रीति-नीति का उल्लेख करेंगे। उसके बाद उन्होंने तीन सूत्रों में योग क्या है, क्यों है का उल्लेख किया है। 'चित्त-वृत्ति का निरोध योग है' कहा है। चित्त् यानि मन, बुद्धि व अस्मिता या अहम्। सामान्य जीवन में इस चित्त के अनुसार ही व्यक्ति व्यवहार करता है, उसके चलाये चलता है,वही स्वामी प्रतीत होता है। पर, पतंजलि का कहना है- वह स्वामी नहीं है। उसको रोको, उसके चलाये न चलो। अंदर झॉको। वहॉ तुम्हें अपना असली स्वामी दिखाई देगा। उसमें ही रमो, उसके चलाये चलो। वही तुम्हारा असली रूप है,वही तुम हो। तुम्हारे दूसरे और-और रूप, चित्तवृत्तियों को अपना मान लेने के कारण बने हैं और वो भी उन जैसे ही। उन्हें छोड़ो। उनसे जुड़ने के बजाय अपने सत्य रूप से जुड़ो। यही योग है- तन, मन, आत्मा का योग। इसके बाद उन्होंने इस लक्ष्य तक कैसे पहुंचें, इसका ही विशद वर्णन किया है।

आधुनिक युग में 'योगा' शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। पर,अधिकत: वह आसन व प्राणायाम की विधियों तक ही सीमित है। पतंजलि के बताये अष्टांग-योग के पहले दो- यम,नियम और पिछले चार –प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। उससे तन का व्यायाम तो ज़रूर हो जाता है, शरीर स्वस्थ रखने में मदद भी मिलती है, पर 'योग-दर्शन' का लक्ष्य पूरा नहीं होता। तन,मन,आत्मा का योग नहीं होता तो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास भी नहीं होता। तब उसकी अशांति सारे विश्व की अशांति का कारण बन जाती है। अशांति न फैले, इसीलिये अष्टांग-योग का पाठ

पतंजलि ने पढ़ाया था। आज की अराजक दुनियॉ में इस पर अमल करने की बहुत ज़रूरत है। अष्टांग-योग पर संक्षिप्त टिप्पणी से यह स्पष्ट हो जायेगा।

यम- व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। समाज में रहना सबके लिये आसान हो, इसके लिये उसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पालन करना सीखना होगा, नहीं तो समाज रहने लायक नहीं रह जायेगा। तो पहले योग में,कर्मेन्द्रियों को हिंसा, झूठ, चोरी, असंयम व लोभ में प्रवृत्त नहीं होने देना है।

नियम- तन से बुराई न हो वो तो ठीक, पर मन स्वच्छ न हुआ तो यह देर तक चलनेवाला नहीं है। साधक को अपने मन को भी वश में करना होगा। इसके लिये कुछ नियमों- शौच, संतोष,तप,स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान का पालन करने से आसानी होगी। सामाजिक दायित्व पूरा करने के साथ-साथ व्यक्ति आत्मोन्नति की ओर भी अग्रसर हो जायेगा।

आसन- तन-मन का असर एक-दूसरे पर होता ही है। तन के विभिन्न आसन ,मन के विकारों का भी नाश कर,तन, मन को लचीला बनाते हैं। फिर, एक ही आसन में,अधिकाधिक समय तक स्थित रहने से,तन, मन का योग होता है।उतने समय तक ,ध्यान को सब ओर से खींच कर, वहॉ ही रखना होता है।

प्राणायाम- श्वास-प्रश्वास पर संयम, तन-मन की गति को प्रभावित करता है। इससे तन, मन के विकार नष्ट होते हैं,रक्त शुद्ध होता है, बिखराव नहीं रहता,एकाग्रता आती है,जो मौन में ले जाती है।

प्रत्याहार- यहॉ आकर साधना स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ जाती है। तन-मन का योग आत्मा की ओर उन्मुख करता है। इसे धारणा, ध्यान व समाधि के पुल के रूप में, जोड़नेवालीकड़ी के रूप में भी जाना जाता है। यहॉ पहुंच कर ही, दृष्टा, दृश्य, दृष्टि एवं सृष्टा, सृजन, सृष्टि में एकत्व दिखना शुरू होता है।

धारणा- यहॉ पहुंच कर तन-मन-आत्मा के योग से एकाग्रता रंग लाने लगती है। इससे दूरदृष्टि मिलती है,जिसे सिद्धि भी कहते हैं। दुनियॉ में प्रसिद्धि का मोह साधक को ,साधना में आगे बढ़ने से रोक सकता है।

धयान – परम लक्ष्य पर ही ध्यान रहे तो सिद्धियों के फेर में न पड़कर, साधक ध्यान की ओर बढ़ जाता है। मेरा शरीर और मैं अलग-अलग हैं अनुभव होने लगता है। दृष्टा, दृश्य और दृष्टि अलग नहीं रह जाते, एक ही हो जाते हैं।

समाधि – अब तन- मन का कोई बंधन नहीं रह जाता। कोई बिखराव नहीं है, सब एक ही है। व्यक्ति समाधि में स्थित हो जाता है।

अब व्यर्थ विवेचना न कर सीधे शास्त्र का ही अनुशीलन कर लेते हैं।

धन्यवाद।

19 अप्रेल,2015

47/1345 एम आई जी आदर्श नगर,

वर्ली, मुम्बई- 30

फोन नं: 24229605

# समाधि पाद

अथ योगानुशासनम् ।।1।।

योगश्चित्तवृत्ति निरोध: ।।2।।

तदाद्रष्टु: स्वरूपेऽ वस्थानम् ।।3।।

वृत्ति सारूप्यमितरत्र ।।4।।

वृत्तय: पंचतय्य: क्लिष्टाऽ क्लिष्टा: ।।5।।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतय: ।।6।।

प्रत्यक्षानुमानाऽ गमा: प्रमाणानि ।।7।।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमेतद्रूप प्रतिष्ठम् ।।8।।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प: ।।9।।

अभावप्रत्ययाऽ लम्बला वृत्तिर्निद्रा ।।10।।

अनुभूतविषयाऽ सम्प्रमोष: स्मृति: ।।11।।

अभ्यासवैराग्याभ्याँ तन्निरोध: ।।12।।

तत्र स्थितौ यत्नोऽ भ्यास: ।।13।।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्काराऽऽ सेवितो दृढ़भूमि: ।।14।।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्थ वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ।।15।।

तत्परं पुरूषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम् ।।16।।

वितर्क विचारानन्दास्मिताऽ नुगमात्सम्प्रज्ञात् ।।17।।

विरामप्रत्ययाभ्यास पूर्व: संस्कार शेषोन्य: ।।18।।

भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलंयानाम् ।।19।।

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।।20।।

तीव्र संवेगानामासन्न: ।।21।।

मृदु मध्याधिमात्रत्वात्ततोऽ पि विशेष: ।।22।।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ।।23।।

क्लेष कर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरूषविशेष: ईश्वर: ।।24।।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।।25।।

# समाधि पाद

अब कहें योग अनुशासन ।।1।।

योग है संयम चंचल मन का ।।2।।

आत्म स्वरूप प्रगट तब होता ।।3।।

मनस्थिति सम रहे अन्यथा ।।4।।

दु:ख-सुख होते पंच प्रवृत्ति में ।।5।।

यथार्थ,अभिप्राय,संदेह,शिथिलता,स्मृति वृत्ति रहें ।।6।।

हैं 'यथार्थ' के भेद तीन- प्रत्यक्ष,अनुमान औ शास्त्र नियम ।।7।।

कहें 'अभिप्राय' जब होवे मिथ्या ज्ञान का आरोपण ।।8।।

बिन वस्तु शब्दादि काल्पनिक ज्ञान ही कहलाता 'संदेह' ।।9।।

हो अभाव अनुभूति तब,जब'शिथिल वृत्ति' होती सक्रिय ।।10।।

अनुभूत विषय ना मिटें प्रगट हों कहलाते वे 'स्मृति' तब ।।11।।

अभ्यास और वैराग्य गहें, जब हो संयत मन वृत्ति तब ।।12।।

'अभ्यास' कहें जब चित् स्वरूप स्थित होने का यत्न करे ।।13।।

दीर्घ काल तक सतत लगन,श्रद्धा से वही स्वभाव बने ।।14।।

हो 'वैराग्य' जब साधक को ना देखे-सुने की हो तृष्णा ।।15।।

स्वात्म ज्ञान से फिर ना आये, प्रकृत गुण-भोगों की कामना ।।16।।

वितर्क,विचार,आनन्द,अस्मिता का अनुगामी ना हो जब ।।17।।

मन,कर्म, रहें न अभ्यासी में, रहते संस्कार ही बस ।।18।।

देह-भाव बिन साधक पाये,ऐसे यह भव प्रत्यय योग ।।19।।

श्रद्धा,लगन,स्मृति,धारणा,प्रज्ञा से पाते और लोग ।।20।।

हों अभ्यास,संवेग तीव्र तो शीघ्र ही योग फलित होता ।।21।।

कम,या मध्य होवे तो फिर, विशेष प्रयत्नों से मिलता ।।22।।

ईश्वर की शरणागति से भी वह मिल जाता ।।23।।

पुरूषविशेष प्रभु न लिप्त है, क्लेश,कर्म,फल,संस्कार से ।।24।।

बीजरूप में ज्ञान नि:सीम,समस्त सृष्टि का वहीं रहे ।।25।।

पूर्वेषामपि गुरू: कालेनानवच्छेदात् ।।26।।

तस्य वाचक: प्रणव: ।।27।।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।28।।

तत: प्रतेयक्चेतनाधिगमोऽ प्यन्तराया भावश्च ।।29।।

व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्या विरति भ्रान्तिदर्शन

अलब्धभूमिकत्वानवस्थित त्वानिचित्त विक्षेपास्तेऽ न्तराया ।।30।।

दु:खदौरेमनस्यांगमेजयत्व श्वासप्रश्वासा विक्षेप सहभुव: ।।31।।

तत्प्रतिषेधार्थमेक तत्वाभ्यास: ।।32।।

मैत्री करूणा मुदितोपेक्षाणां सुखदु:ख पुण्यापुण्य

विषय़ाणां भावनातश्चित्त: प्रसादनम् ।।33।।

प्रच्छर्दन विधारणाभ्याँ वा प्राणस्य ।।34।।

विषयवती वा प्रवृतिरूत्पन्ना मनस:स्थिति निबन्धनी ।।35।।

विशोका वा ज्योतिष्मति ।।36।।

वीतरागविषयं वा चित्तम् ।।37।।

स्वप्न निद्रा ज्ञानालम्बनं वा ।।38।।

यथाऽ भिमत ध्यानाद्वा ।।39।।

परमाणु परम महत्वान्तोऽ स्य वशीकार: ।।40।।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहण

ग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्ति: ।।41।।

तत्र शब्दार्थ ज्ञानविकल्पै: संकीर्णा सवितर्कासमापत्ति ।।42।।

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्येवाऽ र्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का ।।43।।

एतयौव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।।44।।

सूक्ष्म विषयत्वं चाऽ लिंगपर्यवसानम् ।।45।।

ता एव सबीज: समाधि: ।।46।।

निर्विचार वैशारद्येऽ ध्यात्म प्रसाद: ।।47।।

गुरू है सभी पूर्वजों का वह, काल परिधि से नहीं बंधा ।।26।।
ओंकार की प्रणव ध्वनि ही, वर्णन कर पाये उसका ।।27।।
गृहण करे उसका भावार्थ औ करे जाप उसका ही ।।28।।
ज्ञान तभी अंतस्तल का हो, रहे न विघ्न कोई भी ।।29।।
व्याधि,अकर्म,संशय,प्रमाद,आलस्य,काम, भ्रान्तिदर्शन
अधैर्य और ,चंचल मन, ये नौ चित् विक्षेप ही होते विघ्न ।।30।।
करें प्रकट इनको दु:ख,क्षोभ,अनियमित श्वास,देह-कंपन ।।31।।
निराकरण करता इनका इक तत्वाभ्यास ओम चिन्तन ।।32।।
सुख-दु:ख,पुण्य-पाप विषयों में,मैत्री-करूणा,हर्ष-असंगता
भावों को स्थापित कर,चित में आ जाती निर्मलता ।।33।।
सप्रयत्न प्रश्वास करें लंबित तो भी ऐसा हो सकता ।।34।।
अंतर्मुखी वृत्ति में रम, मन की चंचलता खो जाती ।।35।।
शोकरहित प्रकाशवाली वृत्ति भी मन स्थिर रखती ।।36।।
वीतरागता विषय हो चित् का, तो भी स्थिर हो जाता ।।37।।
स्वप्न,निद्रा में तदर्थ ज्ञान से भी मन स्थिरता पाता ।।38।।
धरें ध्यान इक ही अभिमत पर,तब भी स्थिर हो सकता ।।39।।
परमाणु से परम महत् तक,कहीं भी चित् थिर रख सकता ।।40।।
स्फटिक मणि सा पारदर्शी,फिर क्षीण विचार वाला होता
हूं मैं ही ज्ञाता औ,ज्ञेय इस ज्ञान से तदाकार होता ।।41।।
भिन्न शब्दार्थ ज्ञान आधारित, विचार साधना है संकीर्ण ।।42।।
निर्वैचारिक अर्थ मात्र बस, भासित होता स्मृति हीन ।।43।।
यही है व्याख्या इस सूक्ष्म,विचार-निर्विचार समाधि की ।।44।।
मन-चित्तादि विषयों से हट,सूक्ष्म प्रकृति लय होने की ।।45।।
रहतीं बीज रूप में वृत्ति, सबीज (वैचारिक)समाधि में सब ।।46।।
निर्विचार में सतत रहे, आध्यात्म प्रसाद मिलता है तब ।।47।।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।।48।।

श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थ त्वात् ।।49।।

तज्ज: संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी ।।50।।

तसेयापि निरोधे सर्व निरोधान्निर्बीजा: समाधि: ।।51।।

शुद्ध सत्य के गृहण योग्य, बुद्धि हो जाती सत्य भरी ।।48।।

है यह चेतन प्रज्ञा , श्रुत अनुमान से भिन्न अर्थवाली ।।49।।

इसके संस्कार दें मेट दूजे सब संस्कारों को ।।50।।

जब मिट जॉय स्वयं वे भी,निर्बीज समाधि होती वो ।।51।।

## साधन पाद

तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोग: ।।1।।

समाधिभावनार्थ: क्लेशतनूकरणार्थश्च ।।2।।

अविद्याऽ स्मिता,राग,द्वेषाभिनिवेशा: क्लेशा: ।।3।।

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।।4।।

अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।।5।।

दृगदर्शन शक्त्योरेकात्मतेवाऽ स्मिता ।।6।।

सुखानुशयी राग: ।।7।।

दु:खानुशयी द्वेष: ।।8।।

स्वरस वाही विदुषोऽ पि तथारूढ़ोऽ भिनिवेश: ।।9।।

ते प्रतिप्रसवहेया: सूक्ष्मा: ।।10।।

ध्यानहेयास्तद् वृत्तय: ।।11।।

क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टा दृष्ट जन्म वेदनीय: ।।12।।

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा: ।।13।।

तेऽ ह्लाद परिताप फला: पुण्यापुण्य हेतुत्वात् ।।14।।

परिणाम तापसंस्कार दु:खैर्गुण वृत्ति

विरोधाश्च दु:खमेव सर्व विवेकिन: ।।15।।

हेयं दु:खमनागतम् ।।16।।

दृष्टादृश्ययो: संयोगो हेय हेतु: ।।17।।

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।।18।।

विशेषाविशेष लिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वानि ।।19।।

दृष्टादृशिमात्र: शुद्धोपि प्रत्ययानुपश्य: ।।20।।

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ।।21।।

कृतार्थ प्रति नष्टमप्यनष्टम तदन्य साधारण त्वात् ।।22।।

तप, स्वाध्याय औ प्रभुशरणागति,कहते क्रियायोग इनको ।।1।।

करके क्षीण क्लेश ये ही दें वृद्धि, समाधि भावों को ।।2।।

अविद्या,हंता,राग,द्वेष,मृत्युभय हैं ये क्लेश पंच ।।3।।

मुख्य अविद्या शेष चार रहें सुप्त,शिथिल,उग्र हरक्षण ।।4।।

अनित,अपवान दु:ख,नात्मा को नित,पावन,सुख,आत्मा जाने ।।5।।

ये है 'अविद्या',औ 'हंता'-तन,मन को दृष्टा,आत्मा माने ।।6।।

सुख प्रतीति से उसके पीछे भागें तो है 'राग' क्लेश ।।7।।

सुख ना मिलकर दु:ख ही मिलता, वही क्लेश बन जाता 'द्वेष' ।।8।।

जीवन मोह कारण ज्ञानी भी,पायें क्लेश 'मरण भय' से ।।9।।

क्रिया योग करे क्लेश सूक्ष्म,चित् प्रसव पूर्व सा हो फिर से ।।10।।

ध्यान द्वारा फिर होतीं नष्ट,क्लेश की बीज वृत्तियॉ वे ।।11।।

दृष्ट-अदृष्ट जन्मों के कर्म संस्कारों की मूल हैं ये ।।12।।

जब तक मूल रहे फल मिलता,जन्मस्तर,आयु व भोग में ।।13।।

पाप-पुण्य कर्मों के कारण,दुख-सुख मिलते इन तीनों में ।।14।।

सब कर्मों का प्रतिफल है,तन,मन,स्मृति दु:ख से भरना

विरोधी त्रिगुण वृत्ति कारण है, सबमें यह बुध ने जाना ।।15।।

जो कर्म किये ना हैं तजनीय,किये के हैं निश्चित फल-भोग ।।16।।

कर्म-बंध है दृष्टा-दृश्य युति, कर्म-मुक्ति जब ना योग ।।17।।

त्रिगुण वृत्ति,भूतेन्द्रिय ऊर्जा साधक को दें मोक्ष-भोग ।।18।।

गुणानुरूप दृश्य दिखते-प्रगट,अप्रगट,सूक्ष्म,स्थूल ।।19।।

चेतन दृष्टा निर्विकार,उनसे ना होता अभिभूत ।।20।।

डूब दृश्य में पाता 'भोग', आत्मा में डूब मुक्ति 'दृष्टा' ।।21।।

होता सिद्ध गुण,प्रकृति परे, पर साधारण वहीं विचरता ।।22।।

स्वस्वामिशक्त्यो स्वरूपोपलब्धिं हेतु संयोग: ।।23।।

तस्य हेतुरविद्या ।।24।।

तद्भावात्संयोगा भावो हानं तदृशे:कैवल्यम् ।।25।।

विवेक ख्यातिरविप्लवा हानोपाय ।।26।।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमि: प्रज्ञा ।।27।।

योगांगानुष्ठानादशुद्धि क्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेक ख्याते ।।28।।

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार

धारणा ध्यान समाधयोऽ ष्टावंगानि ।।29।।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्याऽ परिग्रहा यमा: ।।30।।

जाति देशकाल समयानवच्छिन्ना: सार्वभौमा महाव्रतम् ।।31।।

शौच संतोष तप:स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा: ।।32।।

वितर्कबाधने प्रतिपक्ष भावनम् ।।33।।

वितर्काहिंसादय:कृतकारिताऽ नुमोदिता लोभक्रोधमोह पूर्वका

मृदुमध्यादिमात्रा दुखज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष भावनम् ।।34।।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: ।।35।।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाऽऽ श्रयत्वम् ।।36।।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।।37।।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ: ।।38।।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथान्तासंबोध: ।।39।।

शौचात्स्वांग जुगुप्सा परैरसंसर्ग: ।।40।।

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्म दर्शनयोग्यत्वानि च ।।41।।

संतोषादनुत्तम सुखलाभ: ।।42।।

कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धिक्षयात्तपस: ।।43।।

दृष्टा-दृश्य युति जब भी देखे,जिज्ञासु खोजे स्वात्मशक्ति ।।23।।

जाने अविद्या कारण है,यह प्रकृति-पुरूष युति बस भ्रान्ति ।।24।।

न हो अविद्या तो युति ना दु:ख, चेतन का कैवल्य यही ।।25।।

दु:ख निवृति का मात्र उपाय, सत्य,विवेक,ज्ञान दृढ़ ही ।।26।।

विवेकी की प्रज्ञा का क्षेत्र सप्त-लोक फिर हो जाते ।।27।।

अष्टांग-योग से हटा अशुद्धि, ज्ञान,दीप्ति,प्रज्ञा पाते ।।28।।

यम,नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान,समाधि

योगी की इन आठ अंगों से योग-साधना होती ।।29।।

अहिंसा,सत्य,अचौर्य,ब्रह्मचर्य,अपरिग्रह 'यम' कहलाते ।।30।।

देश,काल,जाति बंधों से परे,ये ही महाव्रत बन जाते ।।31।।

शुचिता,तोष,तप, स्वाध्याय,प्रभु शरणागति पॉच 'नियम' ।।32।।

वितर्क विरोधी पर न ध्यान दे,करता रहे भाव चिन्तन ।।33।।

हिंसा,लोभ,क्रोध,मोहादि स्वकृत,परकृत,अनुमोदित

लघु वितर्क ये दु:ख असीम दें, अंत्यदृष्टि करे उनको बाधित ।।34।।

हों निर्वैर सभी समीपस्थ , 'अहिंसा' के दृढ़ होने पर ।।35।।

होती वाणी सिद्ध 'सत्य' की दृढ़ स्थिति हो जाने पर ।।36।।

जब 'अचौर्य' दृढ़ होवे तब,रत्नादि स्वयं खिंचे आते ।।37।।

'ब्रह्मचर्य' दृढ़ होने पर, तन, मन, बुद्धि, बल पाते ।।38।।

दृढ़ 'अपरिग्रह' ध्यान बढ़ाकर पूर्वजन्म दिखलाये ।।39।।

स्व-पर तन से विरत करे 'शुचिता' मन निर्मल,असंग रखे ।।40।।

चित्त एकाग्र इन्द्रियॉ वश कर,स्वात्म दर्शन के योग्य बने ।।41।।

सहज प्राप्य से हो 'संतोष', सर्वोत्तम सुख यह होता ।।42।।

मन चांचल्य नष्ट कर 'तप' से,तनेन्द्रियॉ वश में करता ।।43।।

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग: ।।44।।

समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् ।।45।।

स्थिर सुखमासनम् ।।46।।

प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् ।।47।।

ततोद्वन्दानभिघात: ।।48।।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेद:प्राणायाम: ।।49।।

बाह्याभ्यंतरस्तम्भ वृत्तिर्देशकालसंख्याभि:परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म ।।50।।

बाह्याभ्यंतर विषयाक्षेपी चतुर्थ: ।।51।।

तत: क्षीयते प्रकाशावरणम् ।।52।।

धारणासु च योग्यता मनस: ।।53।।

स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार: ।।54।।

तत: परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ।।55।।

होवे जब 'स्वाध्याय' पूर्ण, तब इष्टदेव प्रगटित होते ।।44।।

फले समाधि तब, जब वे योगी 'प्रभु शरणागति' गहते ।।45।।

निश्चल हो सुखपूर्वक बैठे, कहते 'आसन' उसको तब ।।46।।

रहे शिथिल तन, रमे प्रभु में मन, आसन सिद्धि होये तब ।।47।।

सर्दी-गर्मी, हर्ष-शोक, तन-मन के द्वन्द, फिर मिट जाते ।।48।।

करें जब श्वासोच्छवास गति वश, 'प्राणायाम' उसे कहते ।।49।।

देश,समय,स्थितिनुसार, पूरक,कुम्भक,रेचक करते ।।50।।

ये प्रयत्नसाध्य मन बिसराते, स्वत: हो फिर चौथा इससे ।।51।।

अज्ञान हटे प्राणायामों से , ज्ञान, तेज दिखने लगता ।।52।।

औ मन में आ जाती तब, एकाग्रित होने की क्षमता ।।53।।

'प्रत्याहार' है, बाहर ना जा, इंद्रियां सभी लौटें चित् में ।।54।।

साधक के वश रहें इंद्रियॉं, स्वामी सम अब ना बरतें ।।55।।

## भूति पाद

देशबन्ध चित्तस्य धारणा: ।।1।।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।2।।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि: ।।3।।

त्रयमेकत्र संयम: ।।4।।

तज्ज्यात्प्रज्ञालोक: ।।5।।

तस्य भूमिषु विनियोग: ।।6।।

त्रयमंतरङ्गं पूर्वेभ्य: ।।7।।

तदपि बहिरंङ्गं निर्बीजस्य ।।8।।

व्युत्थाननिरोध संस्कारयोरभि भव प्रादुर्भावौ

निरोधक्षण चित्तान्वयो निरोध परिणाम: ।।9।।

तस्य पेरशान्तवाहिता संस्कारात् ।।10।।

सर्वाथतैकाग्रतयो: क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणाम: ।।11।।

तत: पुन:शान्तोदितौतुल्य प्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणाम: ।।12।।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याता: ।।13।।

शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी ।।14।।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतु: ।।15।।

परिणामात्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम् ।।16।।

शब्दार्थ प्रत्ययाना मितरेतराध्यासात् संकर:

तत्प्रविभाग संयमात् सर्वभूतरूतज्ञानम् ।।17।।

संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।।18।।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।।19।।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ।।20।।

कायरूप संयमात् तद्ग्राह्य शक्ति स्तम्भे

चक्षु:प्रकाशास्त्रम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ।।21।।

एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम् ।।22।।

## विभूति पाद

चित् दृष्टि एक जगह ठहराना, योग 'धारणा' होता ।।1।।
रहे वृत्ति थिर सतत वहाँ तो 'ध्यान' योग वह होता ।।2।।
ध्येय मात्र रहे,दृश्य शून्य हो, होती वही 'समाधि' ।।3।।
दृष्टि,दृश्य,दृष्टा की युति ही 'संयम', कहलाती ।।4।।
हो जाती प्रज्ञा आलोकित, यह 'संयम' जब साध सकें ।।5।।
स्थूल,सूक्ष्म,सूक्ष्मेतर में, इस क्रम को ही अपनायें ।।6।।
प्रथम पाँच साधन बहिरंग, ये तीनों हैं अंतरंग ।।7।।
निर्बीज समाधि के पथ पर, ये भी बन जाते बहिरंग ।।8।।
भाव उठने पर करें निरोध, तो बीजरूप वे बन जाते
चित् में कभी प्रगटें,छुपें कभी,'निरोध परिणाम'ये बतलाते ।।9।।
इन निरोध संस्कारों से ही होती चित् की गति प्रशान्त ।।10।।
क्षय हो चिन्तन,बढ़े एकाग्रमन, यह 'समाधि परिणाम' ।।11।।
प्रगट वृत्ति होतीं सम, शान्त, 'एकाग्रता परिणाम' में ।।12।।
यह धर्मालक्षणवस्था होती सब भूत इन्द्रियों में ।।13।।
था,है,होगा में सतत व्याप्त, प्रकृति धर्मी कहलाती ।।14।।
अन्य क्रम अभ्यासों से,मूल प्रकृति बदल जाती ।।15।।
त्रिपरिणामों में संयम से, भूत-भविष्य की प्रज्ञा होती ।।16।।
होते न एक शब्दार्थ ज्ञान, पर संयम करें किसी भाषा पर
उस विशेष भूत वाणी का , अर्थ समझ में आता तब ।।17।।
करें संस्कारों में संयम, तो ज्ञान पूर्व जन्मों का होता ।।18।।
चित्वृत्ति में संयम कर,उस चित् को पढ़ना आ जाता ।।19।।
संयम का विषय न है परचित्त, प्रवृत्ति का ही दर्शन होता ।।20।।
संयम करके काय रूप में,ग्राह्य शक्ति तन की जब रोकें
परावर्तित ना हो आलोक, अंतर्ध्यान हुआ सब बोलें ।।21।।
ऐसे ही ध्वनि, गंधादि में संयम से, ग्राह्य शक्ति रोकें ।।22।।

सोपक्रमंनिरूपक्रमं च कर्मतत्संयमादपरान्त ज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ।।23।।

मैत्र्यादिणु बलानि ।।24।।

बलेषु हस्तिबलादीनि ।।25।।

प्रवृत्या लोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् ।।26।।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।।27।।

चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम् ।।28।।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ।।29।।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।।30।।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृति ।।31।।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।।32।।

मूर्ध ज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।।33।।

प्रातिभाद्वा सर्वम् ।।34।।

हृदये चित्तसंवित् ।।35।।

सत्वपुरूषयोरत्यन्ता संकीर्णयो:प्रत्यया विशेषो

भोग:परार्थात्स्वार्थ संयमात्पुरूष ज्ञानम् ।।36।।

तत:प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।।37।।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय: ।।38।।

बन्धकारण शैथिल्यात्प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्यपरशरीरावेश: ।।39।।

उदानजयाज्जलपंक कष्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ।।40।।

समानजयाज्जवलनम् ।।41।।

श्रोत्राऽ काशयो: सम्बन्धसंयमाद् दिव्यम् श्रोत्रम् ।।42।।

कर्म व अरिष्ट चिन्ह में संयम, मृत्यु ज्ञान करवाता ।।23।।

मैत्री संयम से बने विधायक, अकूत शक्ति पा जाता ।।24।।

हस्ति आदि के बल में संयम, उनसा बली बनाता ।।25।।

हृदयकमल में संयम, ज्ञान ज्योति से, दूरदृष्टि देता ।।26।।

करें सूर्य में संयम, सब लोकों का ज्ञान सहज मिलता ।।27।।

संयम करें चंद्रमा में, तारों का व्यूह ज्ञान मिलता ।।28।।

भौंह मध्य में कर संयम, घटना गति जानी जाती ।।29।।

नाभिचक्र में संयम तन की गति,स्थिति परिचित करवाती ।।30।।

कंठकूप में करें जो संयम, भूख-प्यास निवृति होती ।।31।।

वक्षस्थल की कूर्मनाड़ी में संयम,तन-मन थिरता देती ।।32।।

ब्रह्मरंध्र में करें जो संयम, सिद्धजनों के दर्शन होते ।।33।।

या फिर नैसर्गिक प्रतिभा से, सर्वज्ञान प्राप्ति कर लेते ।।34।।

ह्रदप्रदेश में करके संयम, चित् स्वरूप को जाना करते ।।35।।

स्व पर संयम, प्रकृति-पुरूष एक है दिखला देते ।।36।।

स्वचित् संयम की प्रतिभा, पंचेन्द्रिय अनुभव दिव्य कराती ।।37।।

सिद्धि बस उत्थान बतायें,,रूकें यहीं,समाधि टल जाती ।।38।।

बंध-मुक्त चेतना करा सकती है, परकाया प्रवेश ।।39।।

जय करलें 'उदान' वायु, जल,कंटक हानि करें न लेश ।।40।।

जब जीते 'समान' वायु अग्नि सा दीप्त तन उसका होता ।।41।।

ध्वनि,आकाश में कर संयम, वह दिव्य कर्ण भी पा लेता ।।42।।

कायाऽ काशयो:संबंध संयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम् ।।43।।

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा तत:प्रकाशावरणक्षय: ।।44।।

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमाद् भूतजय: ।।45।।

ततोऽ णिमादि प्रादुर्भाव:कायसम्पत्तध्दर्मानभिघातश्च ।।46।।

रूप,लावण्य,बल,वज्र संहनन त्वानि कायसम्पत् ।।47।।

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व संयमादिन्द्रियजय: ।।48।।

ततो मनोजवित्वंविकरणभाव: प्रधानजयश्च ।।49।।

सत्वपुरूषान्यता ख्यातिमात्रस्य,सर्वभावाधिष्ठातृत्वं,सर्वज्ञातृत्वं च ।।50।।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।।51।।

स्थान्युपनिमन्त्रणे,संगस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात् ।।52।।

क्षणतत्क्रमयो: संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ।।53।।

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्तत: प्रतिपत्ति: ।।54।।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयम क्रमं चेति विवेकडं ज्ञानम् ।।55।।

सत्वपुरूषयो:शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ।।56।।

विरल वस्तु या तनाकाश संयम, नभ में गति दे  देता ।।43।।

सच में स्व से अलग दिखे तन, हो अज्ञान अंधेरा क्षय ।।44।।

स्थूल,सूक्ष्म,लक्षण,गुणार्थ संयम से, पंचतत्व हों जय ।।45।।

मिले इससे अणिमादि सिद्धि, तत्वों के गुण बाधा ना दें ।।46।।

लावण्य,रूप,बल,दृढ़ता ये सब काय सम्पदा उसे मिलें ।।47।।

ग्रहण,रूप,हंता,संबंध,अर्थ संयम से इन्द्रिय  जय हों ।।48।।

अनुभव अशरीरी,तेज गति मन सी,प्रकृति प्रभुता उन्हें मिलें ।।49।।

प्रकृति-पुरूष भेद का बोध मात्र, सर्वज्ञ बना देता ।।50।।

हो नष्ट विराग से दोष बीज जब, तब कैवल्य प्राप्ति करता ।।51।।

है अनिष्ट संभव जो राग,मान करे देव निमंत्रण पर ।।52।।

क्षण, क्रम में संयम रख ले तो ज्ञान, विवेक रहे हर पल ।।53।।

लगें सम देश, जाति, लक्षण, दिखलाये भेद विवेक, ज्ञान ।।54।।

तब तत्क्षण पूर्ण स्पष्ट होय,सभी विषय, वस्तु का भान ।।55।।

मिले मोक्ष जब प्रकृति-पुरूष साम्यता भली-भॉति ले जान ।।56।।

## कैवल्य पाद

जन्मौषधि मंत्रतप: समाधिजा: सिद्धय: ।।1।।

जात्यन्तरपरिणाम: प्रकृत्यापूरात् ।।2।।

निमित्तंप्रयोजकं प्रकृतिनां वरणभेदस्तु तत: क्षेत्रिकवत् ।।3।।

निर्माणचित्तान्य स्मितामात्रात् ।।4।।

प्रवृतिभेदे प्रजोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ।।5।।

तत्र ध्यानजमनाशयम् ।।6।।

कर्माऽ शुक्लाऽ कृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।।7।।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनाम् ।।8।।

जाति,देश,काल व्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ।।9।।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ।।10।।

हेतुफलाश्रयालम्बने: संगेरहीतत्वादेषामभावे तदभाव: ।।11।।

अतीतानागतं स्वरूपतोऽ स्त्यध्यभेदाद्धर्माणम् ।।12।।

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मान: ।।13।।

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्वम् ।।14।।

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्त: पंथा: ।।15।।

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ।।16।।

तदुपरागापेक्षित्वाश्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।।17।।

सदाज्ञातश्चित्तवृत्तयचस्तप्रभो: पुरूषस्यापरिणामित्वात् ।।18।।

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ।।19।।

एक समये चोभयानवधारणम् ।।20।।

जन्म,औषधि, तप, मंत्र,समाधि,सिद्धि प्राप्ति के साधन बनते ।।1।।

हो बदलाव प्रकृत चित् पथ में, तब ही जाति-धर्म बदले ।।2।।

होता न विकास सिद्धियों से,कृषक सम भूमि ठीक करें ।।3।।

हो जाती हंता प्रधान, ऐसे निर्माण किये चित् में ।।4।।

बहु चित्तों को,बहु वृत्ति में, सामान्य चित्त ही नियुक्त करे ।।5।।

केवल ध्यान जनित चित् ही, कर्म-संस्कार विहीन रहे ।।6।।

कर्म न श्वेत-स्याह योगी के, दूजों के हों मिश्रित भी ।।।7।

समयानुसार उनके प्रभाव वृद्धि पायें औ हों प्रगटित ।।8।।

फर्क न देश,काल,जाति का,जन्मों के संस्कार, स्मृति में ।।9।।

इच्छा है-'चिरकाल जिऊं' अनादि काल से, प्राणी में ।।10।।

कार्य-कारण पर है आधारित,इच्छा औ फल दोनों ही ।।11।।

काल-भेद होता कार्यों में, संचे प्रभाव कर्ता चित ही ।।12।।

हों व्यक्त-अव्यक्त,त्रिकाल कर्म,त्रिगुण स्वभाव रहें उनमें ।।13।।

वस्तु तत्व पर सबमें एक, सभी मिलें अंतत: प्रकृति में ।।14।।

हो वस्तु साम्य,चित्वृत्ति भिन्न, तब ही वह अलग-अलग दिखती ।।15।।

दृश्य वस्तु ना चित् अधीन, जब चित् न रहे वस्तु रहती ।।16।।

बिम्ब पड़े ,न पड़े चित् पर, तब वस्तु ज्ञात अज्ञात होय ।।17।।

आत्मा है चित् का स्वामी, उसे वृत्ति ज्ञान सदा ही होय ।।18।।

चित् होता है दृश्य अत: आलोक स्वरूप नहीं होता ।।19।।

साथ-साथ इक समय में, चित् औ विषय ज्ञान ना हो सकता ।।20।।

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धि बुद्धेरति प्रसंग स्मृति संकरश्च ।।21।।

चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारपत्तौ स्वबुद्धि संवेदनम् ।।22।।

दृष्टदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।।23।।

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ।।24।।

विशेष दर्शिन आत्मभाव भावनाविनिवृत्ति: ।।25।।

तदा विवेकानिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।।26।।

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्य: ।।27।।

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ।।28।।

पेरसंख्यानेऽ प्य कुसीदस्य सर्वथाविवेकख्याते धर्ममेघ:समाधि: ।।29।।

तत:क्लेशकर्म निवृति: ।।30।।

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ।।31।।

तत: कृतार्थानाम् परिणामक्रम समाप्तिर्गुणानाम् ।।32।।

क्षण प्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्य: क्रम: ।।33।।

पुरूषार्थशून्यानांगुणानां प्रतिप्रसव: कैवल्यंस्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।।34।।

बहुचित् से स्मृति,भ्रान्ति हो, सत्य का ज्ञान कभी ना हो ।।21।।

स्रोत ढूंढे जब द्रष्टा बन, वृत्ति ज्ञान तभी तो हो ।।22।।

दृश्य चित्त तब बनकर दृष्टा, अर्थवान भी हो जाता ।।23।।

चित् तो बस होता माध्यम, अस्तित्व स्वतंत्र नहीं रखता ।।24।।

चित् आत्मा में देखे भेद, तो रह ना जाये अहम्, भ्रान्ति ।।25।।

मोक्षाभिमुख विवेकी चित् का, बन जाये योगी स्वामी ।।26।।

दृष्टि,दृश्य फिर भी रह जाते, पूर्व संस्कारों के कारण ।।27।।

हो विलीन सब दृष्टामें, जब क्लेश सदृश हो उनका क्षारण ।।28।।

सिद्धि में ना डूबे ज्ञानी, तो समाधि धर्ममेघ पाता ।।29।।

उससे सब कर्मों, क्लेशों का, मूल नाश ही हो जाता ।।30।।

निरावृत, निर्मल ज्ञान अनन्त हो, ज्ञेय वस्तु हो जाती अल्प ।।31।।

ना गुण कार्य, न हों परिणाम,सब क्रम तब हो जाते व्यर्थ ।।32।।

कहलाता 'क्रम' प्रतिक्षण ज्ञान, परिवर्तन परिणामों का ।।33।।

औ 'कैवल्य' कहाता शून्य या कि निज में होना चित् का ।।34।।